शैक्षिक सुधारों की दिशा में एक पहल

प्रो. ए. के. जलालुद्दीन

यह लेख अधिकार की अवधारणा को न्याय के साथ जोड़ते हुए शिक्षा के अधिकार को भारत में शैक्षिक सुधारों के लिए एक आवश्यक कदम मानता है। हालांकि इस अधिकार के साथ आने वाली चुनौतियों की ओर इशारा करते हुए यह लेख बताता है कि शिक्षक प्रशिक्षणों में बेहतरी, शिक्षकों को उचित समर्थन की व्यवस्था, शैक्षिक निर्णय की प्रक्रियाओं का विकेन्द्रीकरण इस कानून को सही मायने में क्रियान्वित करने के लिए प्रभावी कदम होंगे।

शिक्षा के अधिकार कानून को लेकर चल रहा वर्तमान विवाद मेरी नजर में अप्रसांगिक है। मैं इस कानून को शिक्षा में सुधार की शुरुआत के तौर पर देखता हूं। शैक्षिक सुधारों को आगे ले जाने में यह कानून एक कानूनी उपकरण का काम करेगा। यदि ऐतिहासिक संदर्भ में बात करें तो, 'शिक्षा का अधिकार' शब्द का प्रयोग पहले इस रूप में नहीं हुआ है लेकिन भारत में करीब 100 साल पहले से अनिवार्य शिक्षा की बात आरंभ हो गई थी। यदि वैश्विक संदर्भ में देखें तो करीब 200 साल पहले फ्रांस में और इसके बाद इंग्लैण्ड में अनिवार्य शिक्षा का कानून आया। भारत में भी अंग्रेजी जमाने से अनिवार्य शिक्षा के लिए शिक्षा की संहिता होती थी और उसमें हर बच्चे की शिक्षा का लक्ष्य रखा गया था। हमारे यहां आजादी के बाद अलग-अलग राज्यों में अलग-अलग कानून बने और उनमें 'अनिवार्य' की परिभाषा ही हर बच्चे को स्कूल लाना रखी गई थी। लेकिन इसके बावजूद एक समस्या बनी हुई थी और जो अभी तक बनी हुई है कि, बच्चों की संख्या बहुत ज्यादा थी और संसाधन बहुत कम थे। अतः शिक्षा को कानूनी अधिकार मानकर माता-पिता इसके लिए न्यायालय जाने का साहस नहीं कर पाते थे।

वर्तमान में शिक्षा को कानूनी अधिकार का दर्जा देने का सवाल इसलिए महत्त्वपूर्ण बन गया क्योंकि अभी तक देश में शिक्षा के अधिकार से संबंधित कोई कानून नहीं है और जनता को यह अहसास होने लगा कि बच्चों के साथ अन्याय हो रहा है। आमतौर पर लोग अधिकार और न्याय को साथ जोड़कर देखते हैं। बच्चों के साथ अन्याय हो रहा है इसलिए कानून चाहिए ताकि शिक्षा पाने के हक के लिए अदालत जाया जा सके। अन्यथा अनिवार्य शिक्षा में ही एक अधिकार निहित है। हमारे देश में यह एक विरोधाभासी स्थिति है कि एक कानून को लागू नहीं करते और उसके लिए दूसरे कानून की मांग करते हैं। गत वर्षों में स्कूल और कक्षाएं बहुत बनी हैं लेकिन बच्चों का सीखना नहीं होता और इस स्थिति के प्रति अपने आपको कोई जबावदेह भी नहीं मानता। मुझे लगता है कि 'शिक्षा का अधिकार' आने से इसके बारे में एक जबावदेही विकसित होगी। यह सही है कि अभी जिस रूप में यह कानून है, उस सूरत में आसानी से न्यायालय नहीं जाया जा सकता। इसे सही मायने में बच्चों में अधिकार बनाने के लिए ठोस कानून बनाने होंगे।

अभी केन्द्र सरकार ने एक कानून पारित किया है और राज्य इसे लागू करने के लिए केन्द्र से पैसा मांगेंगे। केन्द्रीय स्तर पर नियोजन की एक समस्या यह है कि केन्द्र सरकार समस्त योजनाएं और नियम पहले से ही बनाकर राज्यों को भेज देती है। ऐसे में राज्य सरकारें पहल नहीं करतीं। आजादी के 60 साल बाद भी यह मुमकिन नहीं हुआ है कि राज्य सरकारें खुद अपनी योजनाएं बनाएं, उन्हें लागू करें और उसके अनुरूप पैसा मांगें। राज्य सरकारों को जब पैसा लेना होता है तब वे कहती हैं कि हम इसे जिला स्तर पर विकेन्द्रीकृत करेंगे लेकिन वास्तव में जिला स्तर का काम राज्य स्तर पर कर दिया जाता है। ब्लॉक और गांव स्तर पर नियोजन होता ही नहीं है। क्योंकि सरकारें जल्दी से जल्दी योजना शुरू करके, राशि खर्च करने के दबाव में होती हैं। उनके लिए इस राशि का उपयोगिता प्रमाण पत्र पेश करना ही एक मुख्य काम होता है। इस पूरी प्रक्रिया में जिस

परिचय : राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद में लगभग 14 वर्षों तक प्रोफेसर के पद पर कार्य करते हुए कार्यवाहक निदेशक के पद से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति, शिक्षा के जाने-माने अध्येता, विभिन्न संगठनों में शिक्षा सलाहकार, शिक्षा के सिद्धान्त और व्यवहार को कक्षा प्रक्रियाओं से जोड़ने के लिए इलाहाबाद, कलकत्ता, अलीगढ़, दिल्ली आदि में स्वयंसेवी संगठनों के साथ सतत कार्य, राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर लगभग 100 शोधपत्र प्रकाशित।

संपर्क : सी-33, गंगोत्री एन्कलेव, अलकनन्दा, नई दिल्ली-110019

तरह से पैसे का दुरुपयोग होता है अथवा उपयोग ही नहीं होता, यह उनकी ऑडिट रिपोर्ट से पता चलता है। इस हड़बड़ी के चलते जो कानून पहले से मौजूद हैं उनका भी उचित रूप में क्रियान्वयन नहीं हो पाया।

इस नए कानून के जरिए कम से कम यह संभव है कि शैक्षिक स्थितियों में सुधार के लिए गैर-सरकारी संगठनों और समुदाय के लिए दरवाजा खुलेगा। इसलिए अभी इस पर ज्यादा टिप्पणी करने से कोई फायदा नहीं है। अभी इस कानून के संदर्भ में सामान्य रूप से हमारी चुनौती यह है कि स्कूल प्रशासन को ज्यादा मजबूत कैसे बनाया जाए ताकि शिक्षक स्कूल में आएं, पढ़ाएं और बच्चों के शिक्षा के स्तर में सुधार हो और कैसे स्कूल प्रबंधन को मजबूत करें ?

इस कानून की आलोचनाओं पर चर्चा से पहले यह देखना उचित होगा कि सभी बच्चों को शिक्षा सुलभ कराने के लिए अन्य देशों ने क्या किया ? कुछ देशों ने पहले सोचा कि सभी बच्चों को शिक्षा सुलभ कराने के व्यापक काम को एक साथ करने के बजाय इस दिशा में क्रमशः आगे बढ़ना चाहिए। एक आयु समूह के साथ ठीक से काम करने के बाद, क्रमशः अन्य आयु वर्गों के साथ काम किया जाए। भारत में भी यह किया जा सकता है कि धीरे-धीरे हम इस रास्ते पर आगे बढ़ें। ऐसा हो सकता है कि पहले 5 साल की अनिवार्य शिक्षा लागू करें और फिर इसके दायरे में अगले दो वर्षों को शामिल करें। और इसी क्रम में धीरे-धीरे सभी आयु वर्गों को इसमें शामिल किया जाए। बहुत से देशों में यह काम धीरे-धीरे किया गया है। इसके बाद वहां पर यह भी महसूस किया जा रहा है कि जन्म से ही बच्चों की देखभाल एवं माता-पिताओं की शिक्षा का काम भी होना चाहिए। यदि इस मॉडल को देखें तो इसमें राज्य की जिम्मेदारी आहिस्ता-आहिस्ता बढ़ रही है। लेकिन यदि केन्द्र के स्तर पर ही समस्त चीजें तय की जाएंगी तो इसमें स्थानीय लोगों की किसी भी तरह की भागीदारी नहीं होगी। यह कहा जा सकता है कि पैसे के हिसाब से तो यह राज्य की जिम्मेदारी होनी चाहिए और उसे इस जिम्मेदारी का निर्वहन करना भी चाहिए। लेकिन यदि हम 6 वर्ष से कम आयु के बच्चों के लिए अधिकार की मांग कर रहे हैं तो यह भी देखना होगा कि वस्तुस्थिति क्या है ? वस्तुस्थिति यह है कि राज्य अभी 6 से 14 वर्ष के बच्चों की जिम्मेदारी लेने को भी तैयार नहीं है। सरकारी स्कूलों से बच्चे भाग रहे हैं। ऐसे में 3 से 6 वर्ष या 1 से 6 वर्ष की जिम्मेदारी राज्य के ऊपर डालने से क्या होगा ? समस्या यह है कि जो लोग इस तरह के सवाल उठा रहे हैं वे इस बारे में कोई आवाज नहीं उठा रहे हैं कि शिक्षा का राजनीतिकरण हो गया है, भ्रष्टाचार फैल गया है, शिक्षक पढ़ा नहीं रहे हैं, बच्चे सीख नहीं रहे हैं; इन समस्याओं से कैसे निपटा जाए। अब इन सब चीजों पर सोचने का समय आ गया है और सिर्फ नारा लगाने से काम नहीं चलेगा।

सभी बच्चों को शिक्षा सुलभ कराने एवं शिक्षा व्यवस्था में सुधार के जो प्रयास पूरी दुनिया में चल रहे हैं उन पर यदि नजर डालें तो यह स्पष्ट होता है कि हम कैसे इस दिशा में आगे बढ़ सकते हैं। आधुनिक शिक्षा में अभी जिस तरह के सुधार सारी दुनिया में हो रहे हैं, मैं उनमें से अभी तीन देशों की केस स्टडीज पढ़ रहा हूं, जिसे अमेरिका के एक विश्वविद्यालय ने तैयार किया है। ये तीन स्टडीज-इंग्लैण्ड, न्यूजीलैण्ड और विक्टोरिया प्रोविन्स ऑफ आस्ट्रेलिया-की हैं। यह शोध बताता है कि आज के समय में शिक्षा में सुधार की यह प्रक्रिया दो तरह से चल रही है। पहली है, विकेन्द्रीकरण के माध्यम से। अर्थात् केन्द्रीय स्तर से राज्य स्तर और राज्य से जिला स्तर एवं इसी तरह गांव स्तर तक योजना और प्रबंधन के निर्णय लेने के अधिकार कानूनी तौर पर दिए गए हैं। दूसरी तरह से यह कहा जा रहा है कि शैक्षिक सुधारों को बाजार की ताकतों के हाथों छोड़ देना चाहिए। अर्थात् जो सुधार हों, वे बाजार के जरिए हों। इसके तहत माना यह जा रहा है कि माता-पिता को चयन की स्वतंत्रता दे दीजिए और उसके जरिए शिक्षा में स्वतः ही सुधार हो जाएगा। इनका मानना है कि सरकार प्रत्येक बच्चे की शिक्षा पर जो खर्च करती है, उसकी राशि वाउचर के जरिए माता-पिता को दे दीजिए और वे अपने लिए स्कूल का विकल्प चुन सकते हैं और अपने बच्चे के लिए कोई भी स्कूल चुन सकते हैं। इससे सरकारी स्कूलों पर दबाव पड़ेगा और वे भी सुधार करने के लिए तैयार होंगे। बहुत से देशों का यह अनुभव बता रहा है कि इन दोनों ही रास्ते से सुधार हुआ है। विकेन्द्रीकरण के जरिए और बाजार अर्थनीति के जरिए।

अमेरिका में यह संघीय स्तर के कानून जरिए किया गया है और इंग्लैण्ड में यह बोला जा रहा है कि हर स्कूल एक ट्रस्ट बनाकर पंजीयन करवा लें। स्कूल के संचालन के लिए सरकार पैसा देगी और ट्रस्ट में सरकार का कोई नामित व्यक्ति होगा। इस तरह शिक्षा में सुधार के लिए विकेन्द्रीकरण और गैर-सरकारीकरण की प्रक्रिया के जरिए यह काम हो रहा है। ये सुधार सभी विकसित देशों में हो रहे हैं। निश्चित तौर पर इसका असर होगा ही। हमारे देश में अभी जो स्थितियां हैं उनमें भ्रष्टाचार से निकलने का कोई रास्ता नहीं है, जब तक कि स्थानीय लोगों को अधिकार नहीं मिलेंगे। जब तक शैक्षिक प्रबंधन और शिक्षक को प्रबंधित करने में स्थानीय लोगों की भागीदारी नहीं होगी तब तक इस स्थिति में कोई सुधार नहीं होगा।

अब शिक्षा के अधिकार कानून के बारे में उठाई जा रही आपत्तियों पर विचार किया जा सकता है। इस कानून में स्कूलों में शिक्षकों का प्रावधान जिस तरह किया जा रहा है उससे यह सवाल उठाया जा रहा है कि इससे बहु-कक्षीय शिक्षण को बढ़ावा मिलेगा। इस सवाल को अन्य सवालों से अलग नहीं किया जा सकता। क्योंकि अन्य

सुविधाओं में हमारे स्कूलों की जो स्थिति है, हर स्कूल में हर कक्षा के लिए शिक्षक उपलब्ध नहीं है। कक्षा-कक्ष कम हैं, शिक्षक कम हैं और छात्र ज्यादा हैं। यदि बहु-कक्षीय शिक्षण की जरूरत शिक्षक या स्कूल स्तर से निकलकर आती तो यह खुश होने और सोचने की बात है कि शिक्षक शायद मदद चाहते हैं और उनकी कैसे मदद किया जाए। सरकारी स्कूल को बचाने का तरीका सिर्फ बहु-कक्षीय शिक्षण से ही नहीं जुड़ा है। यह इससे कहीं ज्यादा बड़ा सवाल है। शिक्षक स्कूल जाएं, बच्चों को पढ़ाएं, शिक्षकों को जो सिखाया गया है उसका कक्षा में इस्तेमाल करें। किसी भी कारण से जो बच्चे पिछड़ गए हैं और जिनके परिवार में शिक्षण का माहौल नहीं है, उनकी अलग से मदद करें। इन सभी समस्याओं पर काम करना सरकारी स्कूलों को बचाने के लिए जरूरी हैं। ज्यादातर बच्चों को अलग से मदद चाहिए, जैसा कि इस कानून में भी कहा गया है। ऐसी स्थितियों में बहु-कक्षीय शिक्षण प्रणाली खतरनाक हो सकती है। लेकिन इसके बावजूद बहु-कक्षीय शिक्षण के तरीके को बच्चों के सीखने में मददगार कदम के तौर पर इस्तेमाल किया जा सकता है; जैसा कि चीन ने पर्याप्त शिक्षक होते हुए भी निचली कक्षाओं में किया। हम भी हैदराबाद में इस पद्धति से काम कर रहे हैं। वहां हम कक्षा 2, 3, 4 एवं 5 के बच्चों के समूह इस तरह बनाते हैं कि कोई एक कक्षा न रहकर उसमें सभी कक्षाओं के बच्चे शामिल हो जाएं। इससे सभी बच्चों में जिम्मेदारी का भाव बनता है और बच्चों के सीखने में भी इसका फायदा होता है। अतः यह कहा जा सकता है कि किसी भी तरीके को इस अभिप्राय से इस्तेमाल किया जा रहा है, वह उसकी नियति तय करता है। इस तरह एक तरह के नुकसान की संभावना को फायदे में बदला जा सकता है।

इस तरीके से बच्चों का आपस में सीखना बिना किसी भय के होता है। बच्चे आपस में आसानी से संप्रेषित कर सकते हैं। वे जब अपने अनुभवों को एक-दूसरे से शेयर करते हैं तो इससे उनमें आत्म-विश्वास आता है, सहयोग की भावना का विकास होता है। विभिन्न आयु वर्ग के बच्चों में बहु-कक्षीय शिक्षण के जरिए अन्तःक्रिया एक आयु तक ही संभव है। हमारे यहां पर यह समस्या इसलिए आ रही है क्योंकि स्कूल चलता ही नहीं है। अतः प्राथमिक सवाल यही है कि कैसे सरकारी व्यवस्था को जबावदेह बनाया जाए ? हमारे देश में भी अलग-अलग राज्य में स्थिति अलग-अलग है। दक्षिण भारत में सामान्य रूप से स्थिति बेहतर है। गुजरात, हिमाचल और महाराष्ट्र में स्थिति थोड़ी बेहतर है लेकिन बिहार, उत्तर प्रदेश, झारखण्ड, पश्चिम बंगाल और राजस्थान आदि में स्थिति ज्यादा खराब है।

“बच्चे कैसे सीखते हैं, कैसे अलग-अलग ढंग से सीखते हैं; उनकी भाषा के विकास के साथ उनके सीखने का तरीका, सोचने का तरीका, समझने का तरीका क्या होता है, दिमाग का विकास कैसे होता है आदि सवालों पर शिक्षक प्रशिक्षणों में कोई चर्चा नहीं की जाती। शिक्षक से हमेशा कहा जाता है कि तुम्हें बच्चों को 'सिखाना' है। यह कभी नहीं कहा जाता कि बच्चे को 'सीखना' है और समझना है कि बच्चे कैसे सीखते हैं।”

अभी तक व्यवस्थागत मुद्दों पर चर्चा की गई है लेकिन हमारे यहां एक अन्य गंभीर समस्या शिक्षा की गुणवत्ता की है। निश्चित तौर पर शिक्षा की गुणवत्ता शिक्षक की गुणवत्ता पर निर्भर करती है। यह सही है कि सभी परियोजनाओं में आजकल शिक्षक प्रशिक्षण पर बहुत जोर दिया जा रहा है। लेकिन वास्तविकता यह है कि जिस तरह आजकल शिक्षक प्रशिक्षण हो रहे हैं, क्योंकि सर्व शिक्षा अभियान में यह प्रावधान तो है और शिक्षक प्रशिक्षण भी हो रहे हैं और पैसा भी खर्च हो रहा है लेकिन वास्तविकता यह है कि शिक्षक को प्रशिक्षण में अनेक बार बुलाने पर भी वह नहीं आते हैं, और आ भी जाते हैं तो काम नहीं करते। इससे गांव वालों में भी असंतोष है कि हमेशा ही शिक्षकों प्रशिक्षणों में ले जाते हैं और इस वजह से बच्चों के शिक्षण का काम प्रभावित होता है। हम शिक्षक और शिक्षक प्रशिक्षण पर इतना जोर देते हैं लेकिन हम यह भूल गए कि शिक्षण सीखना नहीं है। बच्चों का सीखना अलग चीज है। बच्चे कैसे सीखते हैं, कैसे अलग-अलग ढंग से सीखते हैं; उनकी भाषा के विकास के साथ उनके सीखने का तरीका, सोचने का तरीका, समझने का तरीका क्या होता है, दिमाग का विकास कैसे होता है; आदि सवालों पर शिक्षक प्रशिक्षणों में कोई चर्चा नहीं की जाती। शिक्षक से हमेशा कहा जाता है कि तुम्हें बच्चों को 'सिखाना' है। यह कभी नहीं कहा जाता कि बच्चे को 'सीखना' है और यह समझना है कि बच्चे कैसे सीखते हैं। इसके लिए बच्चों के साथ रहकर काम करने की जरूरत है। हमारे यहां शिक्षण के इस विज्ञान पर कोई काम नहीं करता। जो लोग विश्वविद्यालयों में काम करते हैं वे सीखने, चिन्तन के विशेषज्ञ या सीखने के सिद्धान्तकार नहीं हैं और शिक्षण का कोई सिद्धान्त होता नहीं है। जब तक कि यह सीखने के सिद्धान्तों और निर्देशन के सिद्धान्तों पर निर्भर नहीं करे। सीखने और निर्देशन के सिद्धान्त होते हैं। हम जब तक उस सिद्धान्त को नहीं समझेंगे तब तक सही प्रकार से शिक्षक को प्रशिक्षण नहीं दे पाएंगे। इसीलिए करीब 40-50 साल पहले प्रशिक्षण शब्द के स्थान पर शिक्षक शिक्षा शब्द का उपयोग होने लगा। इसके पीछे सोच यह थी कि शिक्षक को शिक्षा का दर्शन और मनोविज्ञान जानना चाहिए। लेकिन वास्तव में हमारे यहां शिक्षक प्रशिक्षण को बच्चों के सीखने में आने वाली वास्तविक समस्याओं के साथ जोड़कर देखा ही नहीं जाता। अतः हमारे यहां शिक्षक प्रशिक्षण अवैज्ञानिक तरीकों पर आधारित है। इसके लिए चाहे पैसा दीजिए या कानून

बनाइए, जब तक यह सोच रहेगी तब तक इसमें सुधार होने वाला नहीं है। इसका कक्षा में कोई असर नहीं पड़ने वाला है।

इस कानून के बनने से ऐसा नहीं है कि बच्चों के सीखने में सुधार स्वतः ही आ जाएगा। सारी दुनिया में बच्चों के उपलब्धि और प्रदर्शन के साथ अधिकार को जोड़ा गया है। इसका मतलब है कि व्यवस्था बच्चों के सीखने के प्रति जबावदेह बने। इसे दो चीजों के बारे में निर्धारित किया जा सकता है। एक, मानदण्डों के बारे में कहा जा सकता है कि शिक्षक प्रयास करें कि उनका लक्ष्य क्या है और वह बताए कि उस लक्ष्य तक बच्चे कितना पहुंचे हैं। और यदि बच्चा नहीं सीखा तो इसके लिए क्या साधन, मदद अथवा कितना पैसा चाहिए। इसका मतलब है कि स्कूल शिक्षक को बेहतर काम करने में मदद करे। ऐसा करना स्कूल को जबावदेह बनाने के लिए भी जरूरी है। इस अधिकार के साथ शिक्षा विभाग का भी यह फर्ज बनता है कि वह स्कूल को जिम्मेदारी सौंपे। जब स्कूल स्वयं अपनी जिम्मेदारी ले लेंगे, अपने लक्ष्य तय करेंगे तब जाकर सही मायने में उनकी मांग और जरूरतें निकलकर आएंगी। इसके बाद वास्तव में शिक्षकों की क्षमता में विकास होगा और उनकी तकनीकी मदद फायदेमंद बन पाएगी। तब जाकर सही मायने में शैक्षिक स्थितियों में विकास होगा। जब यह प्रक्रिया चलेगी तब ही शिक्षक अपनी जरूरत के हिसाब से प्रशिक्षण मांगेंगे।

इस कानून के बन जाने के बाद यह राज्य की जिम्मेदारी बन जाती है कि वह अपने डिलेवरी सिस्टम को साधन संपन्न नतीजे लाने के लिए सक्षम बनाए। इसके लिए क्षमता संवर्द्धन, तकनीकी सहायता और प्रबंधन सभी का बेहतर इस्तेमाल जरूरी है। लेकिन यह कानून इसके बारे में कोई बात नहीं कर रहा है। समस्या यह है कि हम प्रबंधन कैसे करें, मोनिटरिंग कैसे करें ताकि व्यवस्था में जबावदेही आए ? सिद्धान्तः कोई भी अधिकार ऐसा करने के लिए मजबूर करता है। वास्तव में यह अधिकार तो कहता है कि शिक्षा अब हर बच्चे का अधिकार है। बच्चे को उसके मौजूदा स्तर से अब ऊंचा उठाना है। यह करने के लिए प्रबंधन भी चाहिए, शिक्षणशास्त्र भी चाहिए और तकनीकी सहयोग भी चाहिए और इसके लिए पैसा भी चाहिए। यह बात सारी दुनिया में हो रही है लेकिन हम नहीं कर रहे हैं। यदि शिक्षा के अधिकार की बात पैसे से शुरू करेंगे तो जहां से बात शुरू होती है वहीं खत्म हो जाती है।

हमें ऐसा नहीं मान लेना चाहिए कि अब यह कानून बन गया तो इससे बहुत जल्दी कुछ सब सुधर जाएगा। बहुत जल्दी ऐसा कुछ होने वाला नहीं है क्योंकि यह लोकवादी तरीके से किया गया है। पहले तो सरकार इस कानून को पारित करना ही नहीं चाहती थी। यदि इस कानून के बनने की प्रक्रिया को देखें तो पता चलता है कि जब पहला प्रारूप बना तो वित्त मंत्रालय ने इसे अटका दिया। सभी राजनैतिक कोणों से इसे देखा गया। यह भी देखा गया कि यदि इस कानून को पारित नहीं करेंगे तो लोग हमारे पीछे भागेंगे। यह भी देखा कि इसे लागू करने में पैसा बहुत बड़ा संकट नहीं है क्योंकि समाज के मुखर तबके की इस कानून में दिलचस्पी नहीं है, उनके बच्चे तो निजी विद्यालयों में जाते हैं और इसे लागू करने में भी उसका दबाव नहीं है। जो लोग यह कानून बना रहे हैं और जो इस कानून पर चर्चा कर रहे हैं, उनमें से किसी के भी बच्चे सरकारी स्कूलों में नहीं जाते। लेकिन इस पर चर्चा विवाद उत्पन्न करने के लिए की जा रही है। वास्तव में किसी का गंभीर रुचि इसे लागू करने या लागू करने के लिए आगे काम करने में नहीं है।

जब तक जनता की ओर से दबाव नहीं आएगा तब तक कुछ नहीं किया जा सकता। कहीं बैठकर यह कहते रहने से कि ऐसा प्रशिक्षण दो या ये दस्तावेज बनाओ, इससे स्कूल की स्थितियों कुछ परिवर्तन नहीं आएगा। स्थानीय स्तर पर यदि कुछ नहीं बदले तो मध्यम वर्ग, जिसके बच्चे इन स्कूलों में नहीं जाते हैं, वे इसके लिए क्या करेंगे। अभी मध्यम वर्ग और गरीब लोगों के हितों में विरोध उत्पन्न हो गया है। मध्यम वर्ग भी नहीं चाहता है कि सारा पैसा सरकारी स्कूलों में लगाया जाए। मध्यम वर्ग यह तो जरूर चाहता है कि निजी स्कूलों में जो बच्चे जा रहे हैं उनके लिए पैसे मिल जाएं। निजीकरण का दबाव गरीब तबके से नहीं आ रहा है बल्कि वह मध्यम और उच्च वर्ग की ओर से आ रहा है।

वास्तव में, यदि स्कूल में सुधार लाना है तो फिर तमाम तरह की तैयारियों के स्वरूप में भी परिवर्तन लाना होगा। शिक्षकों के कोर्स जिस तरह से चिली, ग्वेटामाला, लेटिन अमेरिका और अर्जेंटीना में तैयार किए गए हैं और शिक्षा में परिवर्तन के लिए जो प्रयास किए गए हैं, वे अलग तरह के हैं। ये परिवर्तन शिक्षक प्रशिक्षणों में भी झलकेंगे। वहां पर शिक्षकों को कहा जाता है कि गांव जाकर छः महीने रहो और देखो स्कूल कैसे चलता है। फिर शिक्षक के कोर्स के साथ स्कूल क्षेत्र के समाजशास्त्र, मानवशास्त्र और सामाजिक संघर्ष को जोड़कर देखते हैं। शिक्षक प्रशिक्षण के दौरान ग्रामीण प्रवास में कहा जाता है कि सामाजिक संघर्ष की खोज करो और समझो कि निहित स्वार्थ कैसे स्थानीय प्रशासन में अपनी भूमिका अदा करते हैं। हमारे यहां स्थानीय प्रशासन को किस तरह बदलें ये प्रशिक्षण कहीं नहीं दिया जा रहा है। समाज संघर्ष के लिए तैयार है। यदि सुधार लाना है तो नक्सलवादियों से आगे जाकर गरीबों को संगठित करने और उनके अधिकारों के बारे में उन्हें जागरूक करना होगा।

इस कानून के बारे में यह भी कहा जा रहा है कि इसके माध्यम

से समान स्कूल प्रणाली की बात नहीं कही गई है। मुझे लगता है कि यह बेतुके वक्त में बेतुका समाधान है। जो लोग समान स्कूल प्रणाली की बात करते हैं क्या वे अपने बच्चों को सरकारी स्कूलों में भेजते हैं ? वे ही लोग समान स्कूल में अपने बच्चों को नहीं भेज रहे हैं और वे ही समान स्कूल की आवाज उठा रहे हैं। अभी बाजार की ताकतें बहुत ही मजबूत हैं। अभी समाज बाजार की ताकतों से आगे बढ़ रहा है। हमारे यहां यह भ्रान्त धारणा प्रचलित है कि मध्यम वर्ग बैठकर और कानून बनाकर इस इस स्थिति में सुधार कर देगा। वास्तव में मध्यम वर्ग ही वैश्वीकरण और बाजार की ताकतों का फायदा उठा रहा है। संभवतः इस तरह के विचार इसलिए प्रकट किए जाते हैं क्योंकि ये खास तरह की लोकप्रियता देते हैं और ये लोग संस्थापन विरोधी बातों में लोकप्रियता चाहते हैं।

इसमें एक प्रावधान है कि अलग-अलग राज्य अपने लिए अलग-अलग कानून बनाएं। मुझे लगता है कि यह एक अच्छा कदम हो सकता है क्योंकि हर राज्य की जरूरतें अलग हैं और प्रक्रियाओं के विकेन्द्रीकरण का तरीका भी अलग होगा। जैसे कि दक्षिणी राज्यों में पंचायत अच्छा काम कर रही हैं, वहां पंचायत की पकड़ स्कूल पर अच्छी है, इसलिए वहां पंचायत की भूमिका अलग होगी। इसी प्रकार राजस्थान में भी विकेन्द्रीकरण की दिशा में संघर्ष चल रहा है। अतः वहां भी उनके तरीके अलग होंगे। यह कानून संस्थाओं के विकास के दौर में मदद करेगा। इसके लिए बहुत से शोधों की जरूरत होगी कि विकेन्द्रीकरण और संस्थाओं के विकास के साथ इस कानून को कैसे जोड़ें, इसमें केन्द्र मदद कर सकता है। यदि जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय, भारतीय प्रबंध संस्थान या राष्ट्रीय शिक्षा एवं नियोजन विश्वविद्यालय इस क्षेत्र में शोध करके मदद करेंगे, वास्तव में तब जाकर इस कानून को उचित तरीके से लागू करने की स्थितियां बनेंगी। बच्चों के प्रदर्शन में बेहतरी के लिए शिक्षकों को बेहतर रूप से काम करने में सक्षम बनाने के लिए एनसीईआरटी को काम करना होगा। इन कामों के लिए अभी एनसीईआरटी भी तैयार नहीं है, उसे तैयार करने का काम भी केन्द्र ही कर सकता है। इसमें से कोई भी काम अकेले संभव नहीं है। जब तक राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय अनुभवों को एक साथ इकट्ठा नहीं किया जाएगा तब तक इस कानून को सही ढंग से लागू नहीं किया जा सकेगा। इसके लिए जरूरी है कि हम हमारे पुराने अनुभव से सीखें और साथ ही अन्तर्राष्ट्रीय अनुभव से भी इसे लागू करने के बारे में सीखें और इनके आधार पर हम हमारे लिए रणनीति बनाएं, तभी जाकर यह संभव हो पाएगा। इसे लागू करने में समय लगेगा लेकिन आरंभ से ही इसके साथ शोध, स्थानीय संस्थाओं के विकास और विकेन्द्रीकरण की प्रक्रियाओं को जोड़ना होगा तभी यह कानून शैक्षिक स्थितियों में बुनियादी परिवर्तन करने वाला साबित होगा। ◆